लेखक-परिचय

फणीश्वरनाथ रेणु
(सन् 1921-1977)

प्रसिद्ध कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म गाँव औराही हिंगना (ज़िला पूर्णिया, बिहार) में हुआ और स्कूली शिक्षा नेपाल में। सन् 1942 के आज़ादी के आंदोलन के प्रमुख सेनानी रहे रेणु ने नेपाल की सशस्त्र क्रांति और राजनीति में भी सक्रिय भागीदारी की।

आंचलिक कथाकार के रूप में विख्यात रेणु ने ग्रामीण जीवन का गहन रागात्मक और रसमय चित्र खींचा है। अपनी विशिष्ट भाषा-शैली द्वारा उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को नया आयाम दिया।

प्रमुख कृतियाँ—**मैला आँचल, परती परिकथा, कितने चौराहे** (उपन्यास); **ठुमरी, आदिम रात्रि की महक, अगिनखोर** (कहानी-संग्रह); **ऋणजल-धनजल, नेपाली क्रांति कथा** (रिपोर्ताज)।

मृदुला गर्ग
(जन्म सन् 1938)

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर मृदुला गर्ग का जन्म कोलकाता में हुआ। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. (अर्थशास्त्र) किया। भारत के विभिन्न शहरों में रहने के बाद सन् 1974 से दिल्ली में रहकर स्वतंत्र लेखन। कथा-साहित्य के अलावा उन्होंने अपने समय और समाज की समस्याओं पर वैचारिक निबंध भी लिखे हैं। मृदुला गर्ग ने कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर गद्य-लेखन की प्रचलित परिपाटी को तोड़ा है।

© NCERT not to be republished

प्रमुख कृतियाँ—**उसके हिस्से की धूप, अनित्य, चित्तकोबरा, कठगुलाब** (उपन्यास); **संगति-विसंगति** (दो खंडों में संपूर्ण कहानियाँ); **रंग-ढंग, चुकते नहीं सवाल** (निबंध-संग्रह)।

जगदीश चंद्र माथुर
(सन् 1917-1978)

सुपरिचित नाटककार जगदीश चंद्र माथुर का जन्म खुर्जा (उत्तर प्रदेश) में हुआ और शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। बचपन से ही नाटकों में रुचि होने के कारण स्कूल, कॉलेज के सांस्कृतिक उत्सवों में नाट्य लेखन, निर्देशन और अभिनय करते रहे। आगे चलकर यही शौक सृजन में परिणित हो गया।

जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों में विविधता है। ऐतिहासिक नाटकों के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक समस्याओं से जुड़े एकांकी-नाटक लिखे हैं। उनके कुछ व्यंग्य प्रधान एकांकी चर्चित रहे हैं।

प्रमुख कृतियाँ—**कोणार्क, दशरथ नंदन, शारदीया, पहला राजा** (नाटक); **भोर का तारा, ओ मेरे सपने** (एकांकी-संग्रह)।

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT not to be republished

कृतिका

भाग 1

कक्षा ९ 'अ' पाठ्यक्रम के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

0956

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

0956 – कृतिका (भाग 1)

कक्षा 9 के लिए पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-581-4

प्रथम संस्करण

मई 2006 वैशाख 1928

पुनर्मुद्रण

जनवरी 2007, अक्तूबर 2007,
जनवरी 2009, दिसंबर 2009,
नवंबर 2010, जनवरी 2012,
दिसंबर 2012, नवंबर 2013,
दिसंबर 2014, दिसंबर 2015,
दिसंबर 2016, दिसंबर 2017,
दिसंबर 2018, अगस्त 2019,
जुलाई 2021 और नवंबर 2021

संशोधित संस्करण

अक्तूबर 2022 कार्तिक 1944

पुनर्मुद्रण

मार्च 2024 चैत्र 1946
दिसंबर 2024 अग्रहायण 1946

PD 175T M

© **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006, 2022**

₹ 25.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा स्वपना प्रिंटिंग वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड, डोलतला, डोहरिया, पोस्ट – गंगानगर, जिला – उत्तर 24 परगनास, कोलकाता 700132 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एनसीईआरटी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781 021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम.वी. श्रीनिवासन*
मुख्य संपादक : *बिज्ञान सुतार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *जहान लाल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *अमिताभ कुमार*
संपादक : *मुन्नी लाल*
सहायक उत्पादन अधिकारी : *प्रकाश वीर सिंह*

आवरण एवं सज्जा *अरविंदर चावला*

चित्रांकन *कल्लोल मजूमदार*

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत

© NCERT not to be republished

की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) द्वारा नामित श्री अशोक वाजपेयी और प्रोफ़ेसर सत्यप्रकाश मिश्र को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन

कोविड-19 महामारी को देखते हुए, विद्यार्थियों के ऊपर से पाठ्य सामग्री का बोझ कम करना अनिवार्य है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020* में भी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य सामग्री का बोझ कम करने और रचनात्मक नज़रिए से अनुभवात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने पर ज़ोर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सभी कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों को पुनर्संयोजित करने की शुरुआत की है। इस प्रक्रिया में रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा पहले से ही विकसित कक्षावार सीखने के प्रतिफलों को ध्यान में रखा गया है।

पाठ्य सामग्रियों के पुनर्संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है –

- स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों की पाठ्यपुस्तकों एवं पूरक पाठ्यपुस्तकों में समान विधाओं का समायोजन;
- भाषायी दक्षता के लिए सीखने के प्रतिफलों की प्राप्ति संबंधी विषय वस्तु की उपस्थिति;
- कोविड महामारी से पैदा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम-बोझ और परीक्षा तनाव को कम करना;
- विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से सुलभ पाठ्य सामग्री का होना, जिसे शिक्षकों के अधिक हस्तक्षेप के बिना, वे खुद से या सहपाठियों के साथ पारस्परिक रूप से सीख सकते हों;
- वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक सामग्री का होना।

वर्तमान संस्करण, ऊपर दिए गए परिवर्तनों को शामिल करते हुए तैयार किया गया पुनर्संयोजित संस्करण है।

© NCERT not to be republished

© NCERT
not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य समन्वयक

चंद्रा सदायत, *रीडर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

© NCERT not to be republished

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् निगरानी समिति द्वारा नामित अशोक वाजपेयी और सत्यप्रकाश मिश्र की आभारी है। पुस्तक के विकास में अकादमिक सहयोग के लिए शारदा कुमारी, प्रवक्ता डाइट, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली तथा अनुराधा, पी.जी.टी. (हिंदी), सरदार पटेल विद्यालय, लोदी एस्टेट, नयी दिल्ली के प्रति आभार व्यक्त करती है।

जिन लेखकों और कवियों की रचनाओं को इस पुस्तक में सम्मिलित किए जाने की अनुमति प्राप्त हुई है उनमें फणीश्वरनाथ रेणु की रचना **इस जल प्रलय में** के लिए पद्म पराग रेणु, जगदीश चंद्र माथुर की एकांकी **रीढ़ की हड्डी** के लिए ललित माथुर एवं **मेरे संग की औरतें** के लिए मृदुला गर्ग के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* (भाषा विभाग) परशराम कौशिक; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* सचिन कुमार और अरविंद शर्मा; *कॉपी एडीटर* सुप्रिया गुप्ता, वरुणा मित्तल और प्रमोद तिवारी की आभारी है।

परिषद्, इस संस्करण के पुनर्संयोजन के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों एवं विषय सामग्री के विश्लेषण हेतु दिए गए महत्वपूर्ण सहयोग के लिए पाठ्यचर्या समूह द्वारा गठित की गई समीक्षा समिति में भाषा शिक्षा विभाग के हिंदी संकाय सदस्यों तथा सी.बी.एस.ई. के प्रतिनिधियों के प्रति आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

भूमिका

माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम बनाते समय यह सोचा गया कि इस स्तर पर विद्यार्थियों में विकसित होती हुई साहित्यिक एवं भाषिक अभिरुचि को सुदृढ़ बनाने के लिए पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में विभिन्न साहित्यिक विधाओं का एक ऐसा संकलन तैयार किया जाए जिसे वे स्वयं पढ़कर समझ सकें। पढ़ने की गति को तेज़ करने में पूरक पाठ्यपुस्तकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए ज़रूरी है कि चयनित पाठ्यसामग्री में स्तरानुकूलता, रोचकता और विविधता के साथ ही एक नयापन हो जो उन्हें स्वअध्ययन के लिए प्रेरित करे।

प्रस्तुत पुस्तक में विषयवस्तु की दृष्टि से ही नहीं बल्कि विधा, शैली एवं प्रस्तुति की दृष्टि से भी आकर्षित करने वाली पाँच गद्य रचनाएँ संकलित की गई हैं। कहानी को छोड़कर बाकी रचनाएँ अपेक्षाकृत लंबी हैं जो आज के तेज़ रफ़्तार वाले जीवन में धैर्यपूर्वक पढ़ने की आदत विकसित करेंगी।

हर पाठ के अंत में कुछ प्रश्न-अभ्यास दिए गए हैं जो विद्यार्थियों को पाठ से गहराई से जुड़ने का मौका देंगे।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यहाँ संकलित रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

इस जल प्रलय में **ऋणजल-धनजल** नाम से रेणु ने सूखा और बाढ़ पर कुछ अत्यंत मर्मस्पर्शी रिपोर्ताज लिखे हैं, जिसका एक सुंदर उदाहरण है **इस जल प्रलय में**। इस पाठ में उन्होंने सन् 1975 की पटना की प्रलयंकारी बाढ़ का अत्यंत रोमांचक वर्णन किया है, जिसके वे स्वयं भुक्तभोगी रहे। उस कठिन आपदा के समय की मानवीय विवशता

© NCERT not to be republished

और यातना को रेणु ने शब्दों के माध्यम से साकार किया है। उन्होंने **ऋणजल-धनजल** पुस्तक में **कुत्ते की आवाज़** शीर्षक से पटना की बाढ़ का जो वर्णन किया है उसे जाबिर हुसैन ने संपादित कर **साक्ष्य** पत्रिका के 'नदियों की आग' विशेषांक में **इस जल प्रलय में** शीर्षक से संकलित किया है। प्रस्तुत पाठ वहीं से लिया गया है।

मेरे संग की औरतें यह एक नए प्रकार की शैली में लिखा हुआ संस्मरणात्मक गद्य है। परंपरागत तरीके से जीते हुए भी लीक से हटकर कैसे जिया जा सकता है, यह पाठ ऐसी औरतों पर केंद्रित है।

रीढ़ की हड्डी इस एकांकी के माध्यम से लेखक ने समाज में स्त्रियों के प्रति व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता पर प्रहार करते हुए स्त्रियों की शिक्षा एवं उससे उत्पन्न उनके आत्मविश्वास और साहस को दर्शाया है।

आशा है विद्यार्थी बिना बोझ का अनुभव किए आनंद के साथ इस पुस्तक को पढ़ेंगे। उनमें सृजनात्मक प्रतिभा का विकास होगा तथा वे संकलित लेखकों की अन्य महत्वपूर्ण कृतियों को पढ़ने के लिए भी प्ररित होंगे।

© NCERT not to be republished

विषय-सूची

आमुख — *iii*

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन — *v*

भूमिका — *ix*

1. इस जल प्रलय में
   फणीश्वरनाथ रेणु — 1
2. मेरे संग की औरतें
   मृदुला गर्ग — 13
3. रीढ़ की हड्डी
   जगदीश चंद्र माथुर — 27

लेखक–परिचय — 42

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

© NCERT not to be republished

1

इस जल प्रलय में

फणीश्वरनाथ रेणु

© NCERT not to be republished

मेरा गाँव ऐसे इलाके में है जहाँ हर साल पश्चिम, पूरब और दक्षिण की कोसी, पनार, महानंदा और गंगा की बाढ़ से पीड़ित प्राणियों के समूह आकर पनाह[1] लेते हैं, सावन–भादो में ट्रेन की खिड़कियों से विशाल और सपाट परती[2] पर गाय, बैल, भैंस, बकरों के हज़ारों झुंड–मुंड देखकर ही लोग बाढ़ की विभीषिका[3] का अंदाज़ा लगाते हैं।

परती क्षेत्र में जन्म लेने के कारण अपने गाँव के अधिकांश लोगों की तरह मैं भी तैरना नहीं जानता। किंतु दस वर्ष की उम्र से पिछले साल तक–ब्वॉय स्काउट, स्वयंसेवक, राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा रिलीफ़वर्कर की हैसियत से बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में काम करता रहा हूँ और लिखने की बात? हाईस्कूल में बाढ़ पर लेख लिखकर प्रथम पुरस्कार पाने से लेकर–धर्मयुग में 'कथा–दशक' के अंतर्गत बाढ़ की पुरानी कहानी को नए पाठ के साथ प्रस्तुत कर चुका हूँ। जय गंगा (1947), डायन कोसी (1948), हड्डियों का पुल (1948) आदि छुटपुट रिपोर्ताज के अलावा

1. शरण, आड़ 2. वह ज़मीन जो जोती–बोई न जाती हो 3. भयंकरता

मेरे कई उपन्यासों में बाढ़ की विनाश-लीलाओं के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। किंतु, गाँव में रहते हुए बाढ़ से घिरने, बहने, भंसने और भोगने का अनुभव कभी नहीं हुआ। वह तो पटना शहर में सन् 1967 में ही हुआ, जब अट्ठारह घंटे की अविराम वृष्टि के कारण पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर, कंकड़बाग तथा अन्य निचले हिस्सों में घुस आया था। अर्थात बाढ़ को मैंने भोगा है, शहरी आदमी की हैसियत से। इसीलिए इस बार जब बाढ़ का पानी प्रवेश करने लगा, पटना का पश्चिमी इलाका छातीभर पानी में डूब गया तो हम घर में ईंधन, आलू, मोमबत्ती, दियासलाई, पीने का पानी और कांपोज़ की गोलियाँ जमाकर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे।

सुबह सुना, राजभवन और मुख्यमंत्री-निवास प्लावित[1] हो गया है। दोपहर में सूचना मिली, गोलघर जल से घिर गया है! (यों, सूचना बाँग्ला में इस वाक्य से मिली थी–'जानो! गोलघर डूबे गेछे!') और पाँच बजे जब कॉफ़ी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने हँसकर कहा–"अब कहाँ जाइएगा? कॉफ़ी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा।"

"चलो, पानी कैसे घुस गया है, वही देखना है।" कहकर हम रिक्शा पर बैठ गए। साथ में नयी कविता के एक विशेषज्ञ-व्याख्याता-आचार्य-कवि मित्र थे, जो मेरी अनवरत[2]-अनर्गल[3]-अनगढ़[4] गद्यमय स्वगतोक्ति[5] से कभी बोर नहीं होते (धन्य हैं!)।

1. जिस पर बाढ़ का पानी चढ़ आया हो, जो जल में डूब गया हो 2. निरंतर, लगातार 3. बेतुकी, विचारहीन, मनमानी 4. बेडौल, टेढ़ा-मेढ़ा 5. अपने आप में कुछ बोलना

© NCERT not to be republished

मोटर, स्कूटर, ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल, ट्रक, टमटम, साइकिल, रिक्शा पर और पैदल लोग पानी देखने जा रहे हैं, लोग पानी देखकर लौट रहे हैं। देखने वालों की आँखों में, ज़ुबान पर एक ही जिज्ञासा–"पानी कहाँ तक आ गया है?" देखकर लौटते हुए लोगों की बातचीत–"फ्रेजर रोड पर आ गया! आ गया क्या, पार कर गया। श्रीकृष्णापुरी, पाटलिपुत्र कालोनी, बोरिंग रोड? इंडस्ट्रियल एरिया का कहीं पता नहीं...अब भट्टाचार्जी रोड पर पानी आ गया होगा।...छातीभर पानी है। वीमेंस कॉलेज के पास 'डुबाव-पानी' है।...आ रहा है!...आ गया!!...घुस गया...डूब गया...डूब गया...बह गया!"

हम जब कॉफ़ी हाउस के पास पहुँचे, कॉफ़ी हाउस बंद कर दिया गया था। सड़क के एक किनारे एक मोटी डोरी की शक्ल में गेरुआ-झाग-फेन में उलझा पानी तेज़ी से सरकता आ रहा था। मैंने कहा–"आचार्य जी, आगे जाने की ज़रूरत नहीं। वो देखिए–आ रहा है...मृत्यु का तरल दूत!"

आतंक के मारे मेरे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभय प्रणाम-निवेदन में मेरे मुँह से कुछ अस्फुट[1] शब्द निकले (हाँ, मैं बहुत कायर और डरपोक हूँ!)।

रिक्शावाला बहादुर है कहता है–'चलिए न, थोड़ा और आगे!'

भीड़ का एक आदमी बोला–"ए रिक्शा, करेंट बहुत तेज़ है। आगे मत जाओ।"

मैंने रिक्शावाले से अनुनय भरे स्वर में कहा–"लौटा ले भैया। आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं।"

रिक्शा मोड़कर हम 'अप्सरा' सिनेमा हॉल (सिनेमा-शो बंद!) के बगल से गांधी मैदान की ओर चले। पैलेस होटल और इंडियन एयरलाइंस दफ़्तर के सामने पानी भर रहा था। पानी की तेज़ धारा पर लाल-हरे 'नियन' विज्ञापनों की परछाइयाँ सैकड़ों रंगीन साँपों की सृष्टि कर रही थीं। गांधी मैदान की रेलिंग के सहारे हज़ारों लोग खड़े देख रहे थे। दशहरा के दिन रामलीला के 'राम' के रथ की प्रतीक्षा में जितने लोग रहते हैं, उससे कम नहीं थे...गांधी मैदान के आनंद-उत्सव, सभा-सम्मेलन और खेलकूद की सारी स्मृतियों पर धीरे-धीरे एक गैरिक[2] आवरण

1. अस्पष्ट 2. गेरुए रंग का

आच्छादित[1] हो रहा था। हरियाली पर शनैः-शनैः पानी फिरते देखने का अनुभव सर्वथा नया था। इसी बीच एक अधेड़, मुस्टंड और गँवार ज़ोर-ज़ोर से बोल उठा–"ईह! जब दानापुर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!"

मैंने अपने आचार्य-कवि मित्र से कहा–"पहचान लीजिए। यही है वह 'आम आदमी', जिसकी खोज हर साहित्यिक गोष्ठियों में होती रहती है। उसके वक्तव्य में 'दानापुर' के बदले 'उत्तर बिहार' अथवा कोई भी बाढ़ग्रस्त ग्रामीण क्षेत्र जोड़ दीजिए..."

शाम के साढ़े सात बज चुके और आकाशवाणी के पटना-केंद्र से स्थानीय समाचार प्रसारित हो रहा था। पान की दुकानों के सामने खड़े लोग, चुपचाप, उत्कर्ण[2] होकर सुन रहे थे...

"...पानी हमारे स्टूडियो की सीढ़ियों तक पहुँच चुका है और किसी भी क्षण स्टूडियो में प्रवेश कर सकता है।"

समाचार दिल दहलाने वाला था। कलेजा धड़क उठा। मित्र के चेहरे पर भी आतंक की कई रेखाएँ उभरीं। किंतु हम तुरंत ही सहज हो गए; यानी चेहरे पर चेष्टा करके सहजता ले आए, क्योंकि हमारे चारों ओर कहीं कोई परेशान नज़र नहीं आ रहा था। पानी देखकर लौटते हुए लोग आम दिनों की तरह हँस-बोल रहे थे; बल्कि आज तनिक अधिक ही उत्साहित थे। हाँ, दुकानों में थोड़ी हड़बड़ी थी। नीचे के सामान ऊपर किए जा रहे थे। रिक्शा, टमटम, ट्रक और टेम्पो पर सामान लादे जा रहे थे। खरीद-बिक्री बंद हो चुकी थी। पानवालों की बिक्री अचानक बढ़ गई थी। आसन्न[3] संकट से कोई प्राणी आतंकित नहीं दिख रहा था।

...पानवाले के आदमकद आईने में उतने लोगों के बीच हमारी ही सूरतें 'मुहर्रमी' नज़र आ रही थीं। मुझे लगा, अब हम यहाँ थोड़ी देर भी ठहरेंगे तो वहाँ खड़े लोग किसी भी क्षण ठठाकर हम पर हँस सकते थे–"ज़रा इन बुज़दिलों का

1. ढका हुआ 2. सुनने को उत्सुक 3. पास आया हुआ

© NCERT not to be republished

हुलिया देखो!" क्योंकि वहाँ ऐसी ही बातें चारों ओर से उछाली जा रही थीं–"एक बार डूब ही जाए!...धनुष्कोटि[1] की तरह पटना लापता न हो जाए कहीं!...सब पाप धुल जाएगा...चलो, गोलघर के मुँडे पर ताश की गड्डी लेकर बैठ जाएँ...बिस्कोमान बिल्डिंग की छत पर क्यों नहीं?...भई, यही माकूल मौका है। इनकम टैक्सवालों को ऐन इसी मौके पर काले कारबारियों के घर पर छापा मारना चाहिए। आसामी बा-माल..."

राजेंद्रनगर चौराहे पर 'मैगज़ीन कॉर्नर' की आखिरी सीढ़ियों पर पत्र-पत्रिकाएँ पूर्ववत् बिछी हुई थीं। सोचा, एक सप्ताह की खुराक एक ही साथ ले लूँ। क्या-क्या ले लूँ?...हेडली चेज़, या एक ही सप्ताह में फ्रेंच / जर्मन सिखा देने वाली किताबें अथवा 'योग' सिखाने वाली कोई सचित्र किताब? मुझे इस तरह किताबों को उलटते-पलटते देखकर दुकान का नौजवान मालिक कृष्णा पता नहीं क्यों मुसकराने लगा। किताबों को छोड़ कई हिंदी-बाँग्ला और अंग्रेज़ी सिने पत्रिकाएँ लेकर लौटा। मित्र से विदा होते हुए कहा–"पता नहीं, कल हम कितने पानी में रहें।...बहरहाल, जो कम पानी में रहेगा। वह ज़्यादा पानी में फँसे मित्र की सुधि लेगा।"

फ़्लैट में पहुँचा ही था कि 'जनसंपर्क' की गाड़ी भी लाउडस्पीकर से घोषणा करती हुए राजेंद्रनगर पहुँच चुकी थी। हमारे 'गोलंबर' के पास कोई भी आवाज़, चारों बड़े ब्लॉकों की इमारतों से टकराकर मँडराती हुई, चार बार प्रतिध्वनित होती है। सिनेमा अथवा लॉटरी की प्रचारगाड़ी यहाँ पहुँचते ही–'भाइयो' पुकारकर एक क्षण के लिए चुप हो जाती है। पुकार मँडराती हुई प्रतिध्वनित होती है–भाइयो... भाइयो...भाइयो...! एक अलमस्त जवान रिक्शाचालक है जो अकसर रात के सन्नाटे में सवारी पहुँचाकर लौटते समय इस गोलंबर के पास अलाप उठता है–'सुन मेरे बंधु रे-ए-न...सुन मोरे मितवा-वा-वा-य...'

गोलंबर के पास जनसंपर्क की गाड़ी से ऐलान किया जाने लगा–"भाइयो! ऐसी संभावना है...कि बाढ़ का पानी...रात्रि के करीब बारह बजे तक...लोहानीपुर,

1. एक स्थान का नाम

कंकड़बाग...और राजेंद्रनगर में...घुस जाए। अतः आप लोग सावधान हो जाएँ।"

(प्रतिध्वनि–सावधान हो जाएँ! सावधान हो जाएँ!!)

मैंने गृहस्वामिनी से पूछा–"गैस का क्या हाल है?"

"बस, उसी का डर है। अब खत्म होने वाला है। असल में सिलिंडर में 'मीटर-उटर' की तरह कोई चीज़ नहीं होने से कुछ पता नहीं चलता। लेकिन, अंदाज़ है कि एक या दो दिन...कोयला है। स्टोव है। मगर किरासन एक ही बोतल..."

"फिलहाल, बहुत है...बाढ़ का भी यही हाल है। मीटर-उटर की तरह कोई चीज़ नहीं होने से पता नहीं चलता कि कब आ धमके।"–मैंने कहा।

सारे राजेंद्रनगर में 'सावधान-सावधान' ध्वनि कुछ देर गूँजती रही। ब्लॉक के नीचे की दुकानों से सामान हटाए जाने लगे। मेरे फ़्लैट के नीचे के दुकानदार ने, पता नहीं क्यों, इतना कागज़ इकट्ठा कर रखा था! एक अलाव लगाकर सुलगा दिया। हमारा कमरा धुएँ से भर गया।

सारा शहर जगा हुआ है। पच्छिम की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा करता हूँ...हाँ पीरमुहानी या सालिमपुरा-अहरा अथवा जनक किशोर-नवलकिशोर रोड की ओर से कुछ हलचल की आवाज़ आ रही है। लगता है, एक-डेढ़ बजे रात तक पानी राजेंद्रनगर पहुँचेगा।

सोने की कोशिश करता हूँ। लेकिन नींद आएगी भी? नहीं, कांपोज़ की टिकिया अभी नहीं। कुछ लिखूँ? किंतु क्या लिखूँ...कविता? शीर्षक-बाढ़ आकुल प्रतीक्षा? धत्!

नींद नहीं, स्मृतियाँ आने लगीं–एक-एक कर। चलचित्र के बेतरतीब दृश्यों की तरह!

1947...मनिहारी (तब पूर्णिया, अब कटिहार ज़िला) के इलाके में गुरुजी (स्व. सतीनाथ भादुड़ी) के साथ गंगा मैया की बाढ़ से पीड़ित क्षेत्र में हम नाव पर जा रहे हैं। चारों ओर पानी ही पानी। दूर, एक 'द्वीप' जैसा बालूचर दिखाई पड़ा। हमने कहा, वहाँ चलकर ज़रा चहलकदमी करके टाँगें सीधी कर लें। भादुड़ी जी कहते हैं–

"किंतु, सावधान! ऐसी जगहों पर कदम रखने के पहले यह मत भूलना कि तुमसे पहले ही वहाँ हर तरह के प्राणी शरणार्थी के रूप में मौजूद मिलेंगे" और सचमुच–चींटी–चींटे से लेकर साँप–बिच्छू और लोमड़ी–सियार तक यहाँ पनाह ले रहे थे...भादुड़ी जी की हिदायत थी–हर नाव पर 'पकाही घाव' (पानी में पैर की उँगलियाँ सड़ जाती हैं। तलवों में भी घाव हो जाता है) की दवा, दियासलाई की डिबिया और किरासन तेल रहना चाहिए और, सचमुच हम जहाँ जाते, खाने–पीने की चीज़ से पहले 'पकाही घाव' की दवा और दियासलाई की माँग होती...

1949...उस बार महानंदा की बाढ़ से घिरे बापसी थाना के एक गाँव में हम पहुँचे। हमारी नाव पर रिलीफ़ के डाक्टर साहब थे। गाँव के कई बीमारों को नाव पर चढ़ाकर कैंप में ले जाना था। एक बीमार नौजवान के साथ उसका कुत्ता भी 'कुंई–कुंई' करता हुआ नाव पर चढ़ आया। डाक्टर साहब कुत्ते को देखकर 'भीषण भयभीत' हो गए और चिल्लाने लगे–"आ रे! कुकुर नहीं, कुकुर नहीं ...कुकुर को भगाओ!" बीमार नौजवान छप–से पानी में उतर गया–"हमार कुकुर नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा।" फिर कुत्ता भी छपाक पानी में गिरा–"हमारा आदमी नहीं जाएगा तो हम हुँ नहीं जाएगा"...परमान नदी की बाढ़ में डूबे हुए एक 'मुसहरी'[1] (मुसहरों की बस्ती) में हम राहत बाँटने गए। खबर मिली थी वे कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसाकर खा रहे हैं। किसी तरह जी रहे हैं। किंतु टोले के पास जब हम पहुँचे तो ढोलक और मंजीरा की आवाज़ सुनाई पड़ी। जाकर देखा, एक ऊँची जगह 'मचान' बनाकर स्टेज की तरह बनाया गया है। 'बलवाही'[2] नाच हो रहा था। लाल साड़ी पहनकर काला–कलूटा 'नटुआ' दुलहिन का हाव–भाव दिखला रहा था; यानी, वह 'धानी' है। 'घरनी' (धानी) घर छोड़कर मायके भागी जा रही है और उसका घरवाला (पुरुष) उसको मनाकर राह से लौटाने गया है। इस पद के साथ ही ढोलक पर द्रुत ताल बजने लगा–'धागिड़गिड़–धागिड़गिड़–चकैके चकधुम चकैके चकधुम–चकधुम चकधुम!'

1. एक जाति (आदिवासी) जो दोने, पत्तलें आदि बनाने का काम करती है 2. एक प्रकार का लोक–नृत्य

© NCERT not to be republished

कीचड़-पानी में लथपथ भूखे-प्यासे-नर-नारियों के झुंड में मुक्त खिलखिलाहट लहरें लेने लगती है। हम रिलीफ़ बाँटकर भी ऐसी हँसी उन्हें दे सकेंगे क्या! (शास्त्री जी, आप कहाँ है?) बलवाही नाच की बात उठते ही मुझे अपने परम मित्र भोला शास्त्री की याद हमेशा क्यों आ जाती है? यह एक बार, 1937 में, सिमरवनी-शंकरपुर में बाढ़ के समय 'नाव' को लेकर लड़ाई हो गई थी। मैं उस समय 'बालचर' (ब्वाय स्काउट) था। गाँव के लोग नाव के अभाव में केले के पौधे का 'भेला' बनाकर किसी तरह काम चला रहे थे और वहीं ज़मींदार के लड़के नाव पर हरमोनियम-तबला के साथ झिंझिर (जल-विहार) करने निकले थे। गाँव के नौजवानों ने मिलकर उनकी नाव छीन ली थी। थोड़ी मारपीट भी हुई थी...

और 1967 में जब पुनपुन का पानी राजेंद्रनगर में घुस आया था, एक नाव पर कुछ सजे-धजे युवक और युवतियों की टोली किसी फ़िल्म में देखे हुए कश्मीर का आनंद घर-बैठे लेने के लिए निकली थी। नाव पर स्टोव जल रहा था-केतली चढ़ी हुई थी, बिस्कुट के डिब्बे खुले हुए थे, एक लड़की प्याली में चम्मच डालकर एक अनोखी अदा से नेस्कैफे के पाउडर को मथ रही थी-'एस्प्रेसो' बना रही थी, शायद। दूसरी लड़की बहुत मनोयोग से कोई सचित्र और रंगीन पत्रिका पढ़ रही थी। एक युवक दोनों पाँवों को फैलाकर बाँस की लग्गी से नाव खे रहा था। दूसरा युवक पत्रिका पढ़ने वाली लड़की के सामने, अपने घुटने पर कोहनी टेककर कोई मनमोहक 'डायलॉग' बोल रहा था। पूरे 'वॉल्यूम' में बजते हुए 'ट्रांज़िस्टर' पर गाना आ रहा था-'हवा में उड़ता जाए, मोरा लाल दुपट्टा मलमल का, हो जी हो जी!' हमारे ब्लॉक के पास गोलंबर में नाव पहुँची थी कि अचानक चारों ब्लॉक की छतों पर खड़े लड़कों ने एक ही साथ किलकारियों, सीटियों, फब्तियों की वर्षा कर दी और इस गोलंबर में किसी भी आवाज़ की प्रतिध्वनि मँडरा-मँडराकर गूँजती है। सो सब मिलाकर स्वयं ही जो ध्वनि संयोजन हुआ, उसे बड़े-से-बड़े गुणी संगीत निर्देशक बहुत कोशिश के बावजूद नहीं कर पाते। उन फूहड़ युवकों की सारी

© NCERT not to be republished

'एक्ज़बिशनिज़्म'[1] तुरंत छूमंतर हो गई और युवतियों के रंगे लाल-लाल ओंठ और गाल काले पड़ गए। नाव पर अकेला ट्रांजिस्टर था जो पूरे दम के साथ मुखर था–'नैया तोरी मंझधार, होश्यार होश्यार'!

"काहो रामसिंगार, पनियां आ रहलो है?"

"ऊँहूँ, न आ रहलौ है।"

ढाई बज गए, मगर पानी अब तक आया नहीं, लगता है कहीं अटक गया, अथवा जहाँ तक आना था आकर रुक गया, अथवा तटबंध पर लड़ते हुए इंजीनियरों की जीत हो गई शायद, या कोई दैवी चमत्कार हो गया! नहीं तो पानी कहीं भी जाएगा तो किधर से? रास्ता तो इधर से ही है...चारों ब्लॉकों के प्रायः सभी फ़्लैटों की रोशनी जल रही है, बुझ रही है। सभी जगे हुए हैं। कुत्ते रह-रहकर सामूहिक रुदन करते हैं और उन्हें रामसिंगार की मंडली डाँटकर चुप करा देती है। चौप...चौप!

मुझे अचानक अपने उन मित्रों और स्वजनों की याद आई जो कल से ही पाटलिपुत्र कॉलोनी, श्रीकृष्णपुरी, बोरिंग रोड के अथाह जल में घिरे हैं...जितेंद्र जी, विनीता जी, बाबू भैया, इंदिरा जी, पता नहीं कैसे हैं–किस हाल में हैं वे! शाम को एक बार पड़ोस में जाकर टेलीफ़ोन करने के लिए चोंगा उठाया–बहुत देर तक कई नंबर डायल करता रहा। उधर सन्नाटा था एकदम। कोई शब्द नहीं–'टुंग फुंग' कुछ भी नहीं।

बिस्तर पर करवट लेते हुए फिर एक बार मन में हुआ, कुछ लिखना चाहिए। लेकिन क्या लिखना चाहिए? कुछ भी लिखना संभव नहीं और क्या ज़रूरी है कि कुछ लिखा ही जाए? नहीं। फिर स्मृतियों को जगाऊँ तो अच्छा...पिछले साल अगस्त में नरपतगंज थाना चकरदाहा गाँव के पास छातीभर पानी में खड़ी एक आसन्नप्रसवा[2] हमारी ओर गाय की तरह टुकुर-टुकुर देख रही थी...

नहीं, अब भूली-बिसरी याद नहीं। बेहतर है, आँखें मूँदकर सफ़ेद भेड़ों के झुंड देखने की चेष्टा करूँ...उजले-उजले सफ़ेद भेड़...सफ़ेद भेड़ों के झुंड। झुंड...किंतु

1. प्रदर्शनवाद 2. जिसे आजकल में ही बच्चा होने वाला हो

Reprint 2025-26

सभी उजले भेड़ अचानक काले हो गए। बार-बार आँखें खोलता हूँ, मूँदता हूँ। काले को उजला करना चाहता हूँ। भेड़ों के झुंड भूरे हो जाते हैं। उजले भेड़...उजले भेड़ ...काले भूरे...किंतु उजले...उजले... गेहुएँ रंग के भेड़...!

'ओई द्याखो-एसे गेछे जल!'– झकझोरकर मुझे जगाया गया। घड़ी देखी, ठीक साढ़े पाँच बज रहे थे। सवेरा हो चुका था...आ रहलौ है! आ रहलौ है पनियां। पानी आ गेलौ। हो रामसिंगार! हो मोहन! रामचन्नर–अरे हो...

आँखें मलता हुआ उठा। पच्छिम की ओर, थाना के सामने सड़क पर मोटी डोली की शक्ल में–मुँह में झाग-फेन लिए–पानी आ रहा है; ठीक वैसा ही जैसा शाम को कॉफ़ी हाउस के पास देखा था। पानी के साथ-साथ चलता हुआ, किलोल करता हुआ बच्चों का एक दल...उधर पच्छिम-दक्षिण कोने पर दिनकर अतिथिशाला से और आगे बस्ती के पास बच्चे कूद क्यों रहे हैं? नहीं, बच्चे नहीं, पानी है। वहाँ मोड़ है, थोड़ा अवरोध है–इसलिए पानी उछल रहा है...पच्छिम-उत्तर की ओर, ब्लॉक नंबर एक के पास पुलिस चौकी के पिछवाड़े में पानी का पहला रेला आया...ब्लॉक नंबर चार के नीचे सेठ की दुकान की बाएँ बाजू में लहरें नाचने लगीं।

अब मैं दौड़कर छत पर चला गया। चारों ओर शोर-कोलाहल-कलरव-चीख-पुकार और पानी का कलकल रव। लहरों का नर्तन। सामने फुटपाथ को पार कर अब पानी

© NCERT not to be republished

हमारे पिछवाड़े में सशक्त बहने लगा है। गोलबंर के गोल पार्क के चारों ओर पानी नाच रहा है...आ गया, आ गया! पानी बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है, चढ़ रहा है, करेंट कितना तेज़ है? सोन का पानी है। नहीं, गंगा जी का है। आ गैलो...

सामने की दीवार की ईंटें जल्दी-जल्दी डूबती जा रही हैं। बिजली के खंभे का काला हिस्सा डूब गया। ताड़ के पेड़ का तना क्रमशः डूबता जा रहा है...डूब रहा है।

...अभी यदि मेरे पास मूवी कैमरा होता, अगर एक टेप-रिकार्डर होता! बाढ़ तो बचपन से ही देखता आया हूँ, किंतु पानी का इस तरह आना कभी नहीं देखा। अच्छा हुआ जो रात में नहीं आया। नहीं तो भय के मारे न जाने मेरा क्या हाल होता...देखते ही देखते गोल पार्क डूब गया। हरियाली लोप हो गई। अब हमारे चारों ओर पानी नाच रहा था...भूरे रंग के भेड़ों के झुंड। भेड़ दौड़ रहे हैं—भूरे भेड़, वह चायवाले की झोंपड़ी गई, चली गई। काश, मेरे पास एक मूवी कैमरा होता, एक टेप-रिकार्डर होता...तो क्या होता? अच्छा है, कुछ भी नहीं। कलम थी, वह भी चोरी चली गई। अच्छा है, कुछ भी नहीं—मेरे पास।

© NCERT not to be republished

प्रश्न-अभ्यास

1. बाढ़ की खबर सुनकर लोग किस तरह की तैयारी करने लगे?
2. बाढ़ की सही जानकारी लेने और बाढ़ का रूप देखने के लिए लेखक क्यों उत्सुक था?
3. सबकी ज़बान पर एक ही जिज्ञासा—'पानी कहाँ तक आ गया है?'—इस कथन से जनसमूह की कौन-सी भावनाएँ व्यक्त होती हैं?
4. 'मृत्यु का तरल दूत' किसे कहा गया है और क्यों?
5. आपदाओं से निपटने के लिए अपनी तरफ़ से कुछ सुझाव दीजिए।
6. 'ईह! जब दानापुर डूब रहा था तो पटनियाँ बाबू लोग उलटकर देखने भी नहीं गए...अब बूझो!'—इस कथन द्वारा लोगों की किस मानसिकता पर चोट की गई है?
7. खरीद-बिक्री बंद हो चुकने पर भी पान की बिक्री अचानक क्यों बढ़ गई थी?
8. जब लेखक को यह अहसास हुआ कि उसके इलाके में भी पानी घुसने की संभावना है तो उसने क्या-क्या प्रबंध किए?
9. बाढ़ पीड़ित क्षेत्र में कौन-कौन सी बीमारियों के फैलने की आशंका रहती है?
10. नौजवान के पानी में उतरते ही कुत्ता भी पानी में कूद गया। दोनों ने किन भावनाओं के वशीभूत होकर ऐसा किया?
11. 'अच्छा है, कुछ भी नहीं। कलम थी, वह भी चोरी चली गई। अच्छा है, कुछ भी नहीं—मेरे पास।'—मूवी कैमरा, टेप रिकॉर्डर आदि की तीव्र उत्कंठा होते हुए भी लेखक ने अंत में उपर्युक्त कथन क्यों कहा?
12. आपने भी देखा होगा कि मीडिया द्वारा प्रस्तुत की गई घटनाएँ कई बार समस्याएँ बन जाती हैं, ऐसी किसी घटना का उल्लेख कीजिए।
13. अपनी देखी-सुनी किसी आपदा का वर्णन कीजिए।

© NCERT not to be republished

2

मेरे संग की औरतें

मृदुला गर्ग

मेरी एक नानी थीं। ज़ाहिर है। पर मैंने उन्हें कभी देखा नहीं। मेरी माँ की शादी होने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई थी। शायद नानी से कहानी न सुन पाने के कारण बाद में, हम तीन बहिनों को खुद कहानियाँ कहनी पड़ीं। नानी से कहानी भले न सुनी हो, नानी की कहानी ज़रूर सुनी और बहुत बाद में जाकर उसका असली मर्म समझ में आया। पहले इतना ही जाना कि मेरी नानी, पारंपरिक, अनपढ़, परदानशीं[1] औरत थीं, जिनके पति शादी के तुरंत बाद उन्हें छोड़कर बैरिस्ट्री पढ़ने विलायत चले गए थे। कैंब्रिज विश्वविद्यालय से डिग्री लेकर जब वे लौटे और विलायती रीति-रिवाज के संग ज़िंदगी बसर करने लगे तो, नानी के अपने रहन-सहन पर, उसका कोई असर नहीं पड़ा, न उन्होंने अपनी किसी इच्छा-आकांक्षा या पसंद-नापसंद का इज़हार पति पर कभी किया।

1. परदा करने वाली स्त्री

पर जब कम–उम्र में नानी ने खुद को मौत के करीब पाया तो, पंद्रह वर्षीय इकलौती बेटी 'मेरी माँ' की शादी की फ़िक्र ने इतना डराया कि वे एकदम मुँहज़ोर[1] हो उठीं। नाना से उन्होंने कहा कि वे परदे का लिहाज़ छोड़कर उनके दोस्त स्वतंत्रता–सेनानी प्यारेलाल शर्मा से मिलना चाहती हैं। सब दंग–हैरान रह गए। जिस परदानशीं औरत ने पराए मर्द से क्या, खुद अपने मर्द से मुँह खोलकर बात नहीं की थी, आखिरी वक्त में अजनबी से क्या कहना चाह सकती है? पर नाना ने वक्त की कमी और मौके की नज़ाकत की लाज रखी! सवाल–जवाब में वक्त बरबाद करने के बजाए फ़ौरन जाकर दोस्त को लिवा लाए और बीबी के हुज़ूर में पेश कर दिया।

अब जो नानी ने कहा, वह और भी हैरतअंगेज़ था। उन्होंने कहा, "वचन दीजिए कि मेरी लड़की के लिए वर आप तय करेंगे। मेरे पति तो साहब हैं और मैं नहीं चाहती मेरी बेटी की शादी, साहबों के फ़रमाबरदार[2] से हो। आप अपनी तरह आज़ादी का सिपाही ढूँढ़कर उसकी शादी करवा दीजिएगा।" कौन कह सकता था कि अपनी आज़ादी से पूरी तरह बेखबर उस औरत के मन में देश की आज़ादी के लिए ऐसा जुनून होगा। बाद में मेरी समझ में आया कि दरअसल वे निजी जीवन में भी काफ़ी आज़ाद–खयाल रही होंगी। ठीक है, उन्होंने नाना की ज़िंदगी में कोई दखल नहीं दिया, न उसमें साझेदारी की, पर अपनी ज़िंदगी को अपने ढंग से जीती ज़रूर रहीं। पारंपरिक, घरेलू, उबाऊ और खामोश ज़िंदगी जीने में, आज के हिसाब से, क्रांतिकारी चाहे कुछ न रहा हो दूसरे की तरह जीने के लिए मजबूर न होने में असली आज़ादी कुछ ज़्यादा ही थी।

1. बहुत बोलने वाली 2. आज्ञाकारी

खैर, इस तरह मेरी माँ की शादी ऐसे पढ़े-लिखे होनहार लड़के से हुई, जिसे आज़ादी के आंदोलन में हिस्सा लेने के अपराध में आई.सी.एस. के इम्तिहान में बैठने से रोक दिया गया था और जिसकी जेब में पुश्तैनी पैसा-धेला एक नहीं था। माँ, बेचारी, अपनी माँ और गांधी जी के सिद्धांतों के चक्कर में सादा जीवन जीने और ऊँचे खयाल रखने पर मजबूर हुईं। हाल उनका यह था कि खादी की साड़ी उन्हें इतनी भारी लगती थी कि कमर चनका खा जाती। रात-रात भर जागकर वे उसे पहनने का अभ्यास करतीं, जिससे दिन में शर्मिंदगी न उठानी पड़े। वे कुछ ऐसी नाज़ुक थीं कि उन्हें देखकर उनकी सास यानी मेरी दादी ने कहा था, "हमारी बहू तो ऐसी है कि धोई, पोंछी और छींके पर टाँग दी।" गनीमत यही थी कि किसी ने उन्हें छींके पर से उतारने की पेशकश नहीं की।

क्यों नहीं की, उसकी दो वजहें थीं। पहली यही कि हिंदुस्तान के तमाम वाशिंदों की तरह, उनके ससुरालवाले भी, साहबों से खासे अभिभूत थे और मेरे नाना पक्के साहब माने जाते थे। बस जात से वे हिंदुस्तानी थे, बाकी चेहरे-मोहरे, रंग-ढंग, पढ़ाई-लिखाई, सबमें अंग्रेज़ थे। मज़े की बात यह थी कि हमारे देश में आज़ादी की जंग लड़ने वाले ही अंग्रेज़ों के सबसे बड़े प्रशंसक थे, गांधी-नेहरू हों या मेरे पिता जी के घरवाले। भले लड़का, आज़ादी की लड़ाई लड़ते, जेब खाली और शोहरत सिर करता रहे, दबदबा उसके साहबी ससुर का ही था। एक आन-बान-शान वाले साहब ने उनके सिरफिरे लड़के को अपनी नाज़ुक जान लड़की सौंपी, उससे रोमांचक क्या कोई परिकथा होती! नानी की सनकभरी आखिरी ख्वाहिश और नाना की रज़ामंदी, वे रोमांचक उपकथाएँ थीं, जो कहानी के तिलिस्म को और गाढ़ा बना चुकी थीं। दूसरी वजह माँ की अपनी शख्सियत थी। उनमें खूबसूरती, नज़ाकत, गैर-दुनियादारी के साथ ईमानदारी और निष्पक्षता कुछ इस तरह घुली-मिली थी कि वे परीजात से कम जादुई नहीं मालूम पड़ती थीं। उनसे ठोस काम करवाने की कोई सोच भी नहीं सकता था। हाँ, हर ठोस और हवाई काम के लिए उनकी ज़बानी राय ज़रूर माँगी जाती थी और पत्थर की लकीर की तरह निभाई भी जाती थी।

Reprint 2025-26

मैंने अपनी दादी को कई बार कहते सुना था, "हम हाथी पे हल ना जुतवाया करते, हम पे बैल हैं।" बचपन में ही मुझे इस जुमले का भावार्थ समझ में आ गया था, जब देखा था कि, हम बच्चों की ममतालू परवरिश के मामले में माँ के सिवा घर के सभी प्राणी मुस्तैद[1] रहते थे। दादी और उनकी जिठानियाँ ही नहीं, खुद-मर्दजात, पिता जी भी।

पर ठोस काम न करने का यह मतलब नहीं था कि माँ को आज़ादी का जुनून कम था। वह भरपूर था और अपने तरीके से वे उसे भरपूर निभाती रही थीं। ज़ाहिर है कि जब जुनून आज़ादी का हो तो, उसे निभाना भी आज़ादी से चाहिए। जिस-तिस से पूछकर, उसके तरीके से नहीं, खुद अपने तरीके से।

हमने अपनी माँ को कभी भारतीय माँ जैसा नहीं पाया। न उन्होंने कभी हमें लाड़ किया, न हमारे लिए खाना पकाया और न अच्छी पत्नी-बहू होने की सीख दी। कुछ अपनी बीमारी के चलते भी, वे घरबार नहीं सँभाल पाती थीं पर उसमें ज़्यादा हाथ उनकी अरुचि का था। उनका ज़्यादा वक्त किताबें पढ़ने में बीतता था, बाकी वक्त साहित्य-चर्चा में या संगीत सुनने में और वे ये सब बिस्तर पर लेटे-लेटे किया करती थीं। फिर भी, जैसा मैंने पहले कहा था, हमारे परंपरागत दादा-दादी या उनकी ससुराल के अन्य सदस्य उन्हें न नाम धरते थे, न उनसे आम औरत की तरह होने की अपेक्षा रखते थे। उनमें सबकी इतनी श्रद्धा क्यों थी, जबकि वह पत्नी, माँ और बहू के किसी प्रचारित कर्तव्य का पालन नहीं करती थीं? साहबी खानदान के रोब के अलावा मेरी समझ में दो कारण आए हैं—(1) वे कभी झूठ नहीं बोलती थीं और (2) वे एक की गोपनीय बात को दूसरे पर ज़ाहिर नहीं होने देती थीं।

पहले के कारण उन्हें घरवालों का आदर मिला हुआ था; दूसरे के कारण बाहरवालों की दोस्ती। दोस्त वे हमारी भी थीं, माँ की भूमिका हमारे पिता बखूबी निभा देते थे। मुझे याद है, बचपन में भी हमारे घर में किसी की चिट्ठी आने पर कोई उससे यह नहीं पूछता था कि उसमें क्या लिखा है। भले वह एक बहन की

1. तैयार, चुस्त, तत्पर

Reprint 2025-26

दूसरी के नाम क्यों न हो। और माँ यह जानने को बेहाल हों कि बीमारी से वह उबरी या नहीं। छोटे से घर में छह बच्चों के साथ, सास-ससुर आदि के रहते हुए भी, हर व्यक्ति को अपना निजत्व बनाए रखने की छूट थी। इसी निजत्व बनाए रखने की छूट का फ़ायदा उठाकर, हम तीन बहनें और छोटा भाई लेखन के हवाले हो गए।

लीक से खिसके, अपने पूर्वजों में, माँ और नानी ही रही होतीं तो गनीमत रहती, पर अपनी एक परदादी भी थीं, जिन्हें कतार से बाहर चलने का शौक था। उन्होंने व्रत ले रखा था कि अगर खुदा के फ़ज़ल[1] से, उनके पास कभी दो से ज़्यादा धोतियाँ हो जाएँगी तो वे तीसरी दान कर देंगी। जैन समाज में अपरिग्रह[2] की सनक बिरादरी बाहर हरकत नहीं मानी जाती, इसलिए वहाँ तक तो ठीक था। पर उनका असली जलवा तब देखने को मिला, जब मेरी माँ पहली बार गर्भवती हुईं। मेरी परदादी ने मंदिर में जाकर मन्नत माँगी कि उनकी पतोहू का पहला बच्चा लड़की हो। यह गैर-रवायती मन्नत माँगकर ही उन्हें चैन नहीं पड़ा। उसे भगवान और अपने बीच पोशीदा रखने के बजाए सरेआम उसका ऐलान कर दिया। लोगों के मुँह खुले-के-खुले रह गए। उनके फ़ितूर की कोई वाजिब वजह ढूँढ़े न मिली। यह भी नहीं कह सकते थे कि खानदान में पुश्तों से कन्या पैदा नहीं हुई थी, इसलिए माँ जी बेचारी कन्यादान के पुण्य के अभाव को पूरा करने के चक्कर में थीं। क्योंकि पिता जी की ही नहीं, दादा जी की भी बहनें मौजूद थीं। हाँ, पहला बच्चा हर बहू का बेटा होता रहा था। खैर, माँ जी ने अपनी तरफ़ से कोई सफ़ाई नहीं दी, बल्कि बदस्तूर[3] मंदिर जाकर मन्नत दुहराती रहीं। पूरा नकुड़ गाँव जानता था कि माँ जी का भगवान के साथ सीधा-सीधा तार जुड़ा हुआ है। बेतार का तार। इधर वह तार खींचती, उधर टन से तथास्तु बजता। मेरी दादी तो पहली मर्तबा में ही तैयार हो गई थीं कि गोद में खेलेगी, तो पोती। पर माँ जी की आरज़ू किस कदर रंग लाएगी, उसका उन्हें भी गुमान न रहा होगा।

1. अनुग्रह, दया 2. संग्रह न करना, किसी से कुछ ग्रहण न करना 3. नियम से

लड़की की गैर–वाजिब जुस्तजू सुन, भगवान कुछ ऐसी अफ़रा–तफ़री में आ गए कि एक न दो, पूरी पाँच कन्याएँ, एक–के–बाद–एक धरती पर उतार दीं। भगवान को क्या कहें, माँ जी के सामने तो नामी चोर भी अफ़रा–तफ़री में आ जाते थे। माँ जी और नामी चोर का किस्सा होश सँभालने के बाद मैंने कई बार सुना था, चोर के दीदार की खुशनसीबी भी हाथ आई थी।

हुआ यूँ था कि किसी शादी के सिलसिले में नकुड़ की हवेली के तमाम मर्द बारात में दूसरे गाँव गए हुए थे। औरतें सज–धज कर रतजगा मना रही थीं। नाच–गाने और ढोलक की थाप के शोर में नामी चोर कब सेंध लगाकर हवेली में घुसा, किसी को खबर न हुई। पर चोर था बदकिस्मत, जिस कमरे में घुसा, उसमें माँ जी सोई हुई थीं। औरतों के शोर से बचने को, वे अपना कमरा छोड़ दूसरे में जा सोई थीं। चोर बेचारा, तमाम जुगराफ़िया दिमाग में बिठलाकर उतरा था, उसे क्या पता था कि इतनी बड़ी–बूढ़ी पुरखिन जगह बदल लेगी। खैर, बुढ़ापे की नींद ठहरी, चोर के दबे पाँवों की आहट से ही खुल गई।

"कौन?" माँ जी ने इतमीनान से पूछा।

"जी, मैं", चोर ने युगों से चला आ रहा, पारंपरिक, असंगत जवाब दिया।

"पानी पिला", माँ जी ने कहा।

"जी मैं...?" चोर झिझककर रह गया।

तब तक माँ जी बिस्तर के बराबर में टटोलकर देख चुकी थीं, लोटा खाली था। "ऐसा कर", उन्होंने कहा, "यह लोटा ले और कुएँ से पानी भर ला। पर देख, कपड़ा कसकर बाँधे रखियो और तरीके से छानियो।"

चोर घबरा गया, अँधेरे में इन्होंने कैसे जाना कि उसके मुँह पर कपड़ा बँधा है और कमर में भाँग। भगवान से उनका तार जुड़े होने की खबर उसे थी। पर बुढ़िया भाँग भी छानती होगी, एकदम यकीन न हुआ। इसी से कुछ हैरान–परेशान हो उठा।

"जल्दी कर भाई", तभी माँ जी ने कहा, "बड़ी प्यास लगी है।"

"पर मैं तो चोर हूँ", मारे घबराहट और धर्मसंकट के चोर सच कह गया।

© NCERT not to be republished

"हुआ करे", माँ जी ने कहा, "प्यासे को पानी तो पिला। पर देख, मेरा धरम न बिगाड़ियो, लोटे के मुँह से कपड़ा न हटाइयो, हाथ रगड़कर धो लीजो और पानी कपड़े से छानकर भरियो।"

"आप चोर के हाथ का पी लोगी?"

"कहा न, रगड़कर धो लीजो, सब नाच-गाने में लगे हैं, तेरे और भगवान के सिवा कौन धरा है, जो पिलाएगा।"

भगवान वहीं-कहीं उसके बराबर में धरे हैं, सुनकर चोर कुछ ऐसा अकबकाया[1] कि लोटा उठाकर चल दिया। पूरी एहतियात के साथ पानी भरकर लौटा तो, पहरेदार ने धर-दबोचा। कुँए पर देख लिया गया था।

तब माँ जी ने लोटे का आधा पानी खुद पीकर, बाकी चोर को पिला दिया और कहा, "एक लोटे से पानी पीकर हम माँ-बेटे हुए। अब बेटा, चाहे तो तू चोरी कर, चाहे खेती।"

बेटा बेचारा किस लायक रह गया होगा। सो रोमांचक धंधा छोड़ खेती से लगा। सालों-साल लगा रहा। जब मैंने उसे देखा तो बड़ा भलामानुस बूढ़ा लगा मुझे, डरा-डरा, हैरान-सा।

अब खानदानी विरासत कहिए या जीवाणुओं का प्रकोप, उन दो सनकी बुढ़ियों के बीच मैं अच्छी फँसी! एक तरफ़, माँ जी के चलते, अपने लड़की होने पर कोई हीन भावना मन में नहीं उपजी। दूसरी तरफ़, नानी के चलते, देश की आज़ादी को लेकर नाहक रोमानी ही रही।

1. घबराया

15 अगस्त 1947 को, जब देश को आज़ादी मिली या कहना चाहिए, जब आज़ादी पाने का जश्न मनाया गया तो दुर्योग से मैं बीमार थी। उन दिनों, टाइफ़ाइड खासा जानलेवा रोग माना जाता था। इसलिए मेरे तमाम रोने-धोने के बावजूद डॉक्टर ने मुझे इंडिया गेट जाकर, जश्न में शिरकत करने की इजाज़त नहीं दी। चूँकि डॉक्टर अपने नाना के परम मित्र, उनसे ज़्यादा नाना थे इसलिए हमारे पिता जी, जो बात-बात पर सत्ताधारियों से लड़ते-भिड़ते फिरते थे, चुप्पी साध गए। मैं बदस्तूर रोती-कलपती रही, क्या कोई बच्चा इकलौती गुड़िया के टूट जाने पर रोया होगा! मेरी उम्र तब नौ बरस की थी। इतनी छोटी नहीं कि गुड़िया से बहलती और इतनी बड़ी नहीं कि डॉक्टरी तर्क समझती। तंग आकर पिता जी मुझे 'ब्रदर्स कारामजोव'[1] उपन्यास पकड़ा गए। किताबें पढ़ने का मुझे मिराक[2] था। सो, जब कुछ देर बाद मैंने देखा कि पिता जी को छोड़कर, घर के बाकी सब प्राणी पलायन कर चुके थे और पिता जी दूसरे कमरे में बैठे अपनी किताब पढ़ रहे थे तो, रोना-धोना छोड़कर मैंने भी किताब खोल ली। एक बार शुरू कर लेने पर, उसने मुझे इतनी मोहलत[3] नहीं दी कि दोबारा रोना शुरू करूँ या कोई और काम पकड़ूँ। उस वक्त 'ब्रदर्स कारामजोव' मुझे देने में क्या तुक थी, तब मेरी समझ में नहीं आया। किताब कितनी समझ में आई, वह अब तक नहीं जानती, क्योंकि उसके बाद इतनी बार पढ़ी कि सारे पाठ आपस में गड्ड-मड्ड हो गए। कितना पहली बार में पल्ले पड़ा, कितना बाद में, कहना मुश्किल है। पर इतना विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि उसका एक अध्याय, जो बच्चों पर होने वाले अनाचार-अत्याचार पर था, मुझे पहली बार में ही लगभग कंठस्थ हो गया था। उम्र के हर पड़ाव पर वह मेरे साथ रहा और मेरे लेखन के एक महत्त्वपूर्ण भाग को प्रभावित करता रहा। जैसे 'जादू का कालीन' मेरा नाटक, 'नहीं' व 'तीन किलो की छोरी', जैसी कहानियाँ व 'कठगुलाब' उपन्यास के कई अंश।

1. इसके लेखक प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार दास्तोवस्की हैं 2. मानसिक रोग 3. फुर्सत, अवकाश

माँ जी की मन्नत का असर रहा होगा कि मैं ही नहीं, मेरी चारों बहनें भी लड़की होने के नाते किसी हीन भावना का शिकार नहीं हुईं। नानी, माँ और परदादी की परंपरा बरकरार रखते हुए, लीक पर चलने से भी इनकार किए रहीं।

पहली लड़की, जिसके लिए मन्नत माँगी गई थी, वह मैं नहीं, मेरी बड़ी बहन, मंजुल भगत थी। घर का नाम था—रानी, बाहर का मंजुल; लेखिका अवतार हुआ, मंजुल भगत। क्योंकि लिखना शादी के बाद शुरू किया और अपना नाम बदलकर पति का ग्रहण करने में कोई हीन भावना आड़े नहीं आई, इसलिए पैदाइशी जैन नाम छोड़ भगत बनीं। दूसरे नंबर पर मैं थी, घर का नाम उमा, बाहर का मृदुला। मैंने भी शादी के बाद लिखना शुरू किया सो बतौर लेखिका नाम चला मृदुला गर्ग। मुझे याद है, जब हमने लिखना शुरू किया, उससे कुछ पहले नारीवाद का चलन हुआ था। शादी के बाद नाम न बदलने का रिवाज उसी ने चलाया था। मन्नू भंडारी का हवाला देकर, हमसे पूछा भी जाता था कि आप लोग इतनी पोंगापंथी, घरघुस्सू क्यों हो? नाम क्यों बदला? हमारे पास इसका कोई ढंग का जवाब नहीं होता था। अब भी नहीं है। पर नाम बदलने से, अपने व्यक्तित्व का कोई नुकसान होते, मैंने नहीं देखा। पूछने को तो पिताजी से लोग यह भी पूछते थे, पाँच बेटियों से आपका मन नहीं भरा जो हर बेटी के दो-दो नाम रख छोड़े हैं। मुझसे छोटी बहन का घर का नाम है गौरी और बाहर का चित्रा। वह नहीं लिखती। उसका कहना है, वह इसलिए नहीं लिखती क्योंकि घर में कोई पढ़ने वाला भी तो चाहिए। खैर, उसके बाद जब चौथी-पाँचवीं बेटियाँ पैदा हुईं तो, पिता जी ने इतनी बात ज़माने की सुनी कि उनका एक-एक नाम ही रखा। रेणु और अचला। पाँच बहनों के बाद एक भाई हुआ, राजीव। मज़े की बात यह है कि बीच की दो बहनें ही लेखन से बची रहीं। अचला और राजीव फिर उसमें जा फँसे। अचला मुझसे आठ साल छोटी है और वक्त के बदलाव की लाज रखते हुए, अंग्रेज़ी में लिखती है। पर राजीव फिर हिंदी के हवाले।

हम चार लिखते हैं और तमाम खानदान हमें पढ़ता है। मेरी ससुराल में मुझे कोई नहीं पढ़ता। इस तथ्य को हज़म करने में मुझे काफ़ी वक्त लगा। फिर उसके फ़ायदे भी नज़र आने लगे। कम-से-कम, घर के भीतर तो मुझे हिंदी आलोचना-बुद्धि से दो-चार नहीं होना पड़ता।

खैर, मैं अपनी नहीं, उन अ-देवियों की बात कहना चाहती हूँ, जो परदादी की मन्नत के नतीजतन धरती पर आईं और लेखक नहीं बनीं। जो बनीं, उन्हें साँस लेने की ज़रूरत कुछ ज़्यादा हो, समझ में आता है, जैसा मेरे पिता जी ने एक बार मंजुल से कहा था। कोई दम नहीं घुटता, साँस लेने की ज़रूरत ही ज़्यादा है। पर यहाँ तो, हम सेर तो गैर-लेखिका बहनें सवा सेर। चौथे नंबर वाली रेणु का आलम यह था कि गरमी की दुपहरी में स्कूल से वापसी पर, जब गाड़ी उसे और उससे छोटी बहन अचला को बस अड्डे से लेने जाती, तो रेणु उसमें बैठने से इनकार कर देती। उसका कहना था कि यूँ थोड़ा-सा रास्ता गाड़ी में बैठकर तय करना, सामंतशाही का प्रतीक था। जो शायद था। पर साथ ही पिता के अतिरिक्त लाड़ का भी। और रसोइये को खाना खिलाकर जल्दी फ़ारिग[1] करने की लाचारी का भी। माँ तो सब चीज़ों से उदासीन रहती थीं पर पिता काफ़ी कुढ़ते-भुनते, जब देखते कि अचला गाड़ी में बैठी चली आ रही है और रेणु, पीछे-पीछे, पसीने में तरबतर, खरामा-खरामा[2]। बचपन में एक बार चुनौती दिए जाने पर उसने जनरल थिमैया को पत्र लिखकर, उनका चित्र मँगवा लिया था, जो एक मोटरसाइकिल सवार जवान आकर, उसके हाथ में दे गया था। पड़ोस में उसका रुतबा काफ़ी बढ़ गया था। गाड़ी में बैठने के साथ, उसे इम्तिहान देने से भी परहेज़ था। स्कूल तो जैसे-तैसे पास कर लिया पर जब बी.ए. का इम्तिहान देने की बारी आई तो, वह अड़ गई। पहले मुझे समझाओ कि बी.ए. करना क्यों ज़रूरी है, तब मैं इम्तिहान दूँगी, अगर मुझे यकीन आ गया कि हाँ, कोई फ़ायदा है, वरना नहीं। हमने तरह-तरह के तर्क दिए, माँ ने कहा, पिता जी से पूछो।

1. कार्य से निवृत्त, निश्चिंत 2. धीरे-धीरे

पिता जी ने कहा, नौकरी कर पाओगी, शादी कर पाओगी, लोग इज़्ज़त से देखेंगे, वगैरह–वगैरह। कोई तर्क विश्वसनीय नहीं लगा, न रेणु को, न खुद उन्हें। आखिर उन्होंने उसी कुतर्क का सहारा लिया जो, युगों से, माँ–बाप के काम आता रहा है। कहा, बी.ए. करो, क्योंकि मैं कह रहा हूँ, करो। रेणु ने बी.ए. कर तो लिया पर सिर्फ़ पिता की खुशी के लिए, यानी पास होने लायक नंबर लाकर। सच बोलने में वह माँ से भी दो कदम आगे है। गनीमत यह है कि आधा समय उसके सच सुनकर लोग सोचते हैं, वह मज़ाक कर रही होगी इसलिए बिना मेहनत, वह लोगों को हँसाए रख लेती है। आज भी, उसे कोई इत्र भेंट करता है तो वह कहती है, "नहीं चाहिए। मैं तो नहाती हूँ।"

तीसरे नंबर पर चित्रा है। वह कालेज पढ़ने तो जाती थी पर खुद पढ़ने से ज़्यादा दिलचस्पी, औरों को पढ़ाने में रखती थी। इसलिए इम्तिहान में उसके अंक कम और उसके शागिर्दों के ज़्यादा आते थे। पर अपने यहाँ सब चलता था। उसकी शादी का वक्त आया तो उसने एक नज़र में लड़का पसंद करके ऐलान कर दिया कि शादी करेगी तो उसी से। मुश्किल यह थी कि हमारे माँ–बाप ही नहीं, खुद लड़का भी उसके निर्णय से वाकिफ़ नहीं था। पर उसका कहना था, वह जो सोच लेती है, करके रहती है। तो उसकी शादी उसी लड़के से हुई। कोई मुश्किल पेश नहीं आई। आती क्यों? उसने कहा, "मैंने पहली मुलाकात में ही उसे बतला दिया था कि मैं जो सोच लेती हूँ, होकर रहता है।" तो उसने बात आगे खींची ही नहीं। पहली मुलाकात में ही हथियार डाल दिए।

हममें सबसे छोटी बहन, अचला काफ़ी दिनों तक कुछ कम खिसकी मालूम पड़ती रही। पिता का कहा मानकर, पहले अर्थशास्त्र किया, फिर पत्रकारिता में दाखिला लिया, ढंग से पढ़ाई की, पास हुई। फिर पिता की पसंद से शादी भी कर ली। पर उसके आगे लीक पर नहीं चल पाई। घरबार में मन ज़्यादा रुचा नहीं और मंजुल और मेरी तरह उम्र के तीस बरस पार करते ही, लिखने का रोग लगा लिया।

एक बात हममें एक–सी रही। घरबार को परंपरागत तरीके से हमने भले न चलाया हो, उसे तोड़ा भी नहीं, शादी एक बार की और उसे कायम रखा। चाहे तलाक के कगार पर खड़ी चली हो पर कगार तोड़, डूबी नहीं। शायद इसलिए कि जैसा मैंने अपने पहले उपन्यास में लिख डाला था, हम सभी विश्वास करती रही होंगी कि मर्द बदलने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। घर के भीतर रहते हुए भी, अपनी मर्ज़ी से जी लो, तो काफ़ी है।

शादी के बाद मैं बिहार के ऐसे छोटे कस्बे (डालमिया नगर) में रही, जहाँ मर्द–औरतें, चाहे पति–पत्नी क्यों न हों, पिक्चर देखने भी जाते तो अलग–अलग दड़बों में बैठते। मैं दिल्ली से कालेज की नौकरी छोड़कर वहाँ पहुँची थी और नाटकों में अभिनय करने की शौकीन रही थी। मैंने उनके चलन से हार नहीं मानी। सालभर के भीतर, उन्हीं शादीशुदा औरतों को पराए मर्दों के साथ नाटक करने के लिए मना लिया। अगले चार साल तक हमने कई नाटक किए। अकाल राहत कोष के लिए, उन्हीं के माध्यम से पैसा भी इकट्ठा किया।

वहाँ से निकली तो कर्नाटक के और भी छोटे कस्बे, बागलकोट में पहुँच गई। तब तक मेरे दो बच्चे हो चुके थे, जो स्कूल जाने लायक उम्र पर पहुँच रहे थे। पर वहाँ कोई ढंग का स्कूल नहीं था।

लोगों की राय पर, मैंने पास के कैथोलिक बिशप से दरख्वास्त की कि उनका मिशन, वहाँ के सीमेंट कारखाने की आर्थिक मदद से, हमारे कस्बे में एक प्राइमरी स्कूल खोल दे। पहले उन्होंने कहा, चूँकि उस प्रदेश में क्रिश्चियन जनसंख्या कम थी, इसलिए वे वहाँ स्कूल खोलने में असमर्थ थे। मैंने गैर–क्रिश्चियन बच्चों को भी शिक्षा पाने के लायक सिद्ध करते हुए, अपना इसरार[1] जारी रखा। तब उन्होंने कहा, "हम कोशिश कर सकते हैं, बशर्ते आप हमें यकीन दिलाएँ कि वह स्कूल, अगले सौ बरसों तक चलता रहेगा।" मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा, "स्कूल की छोड़िए, किसी के भी बारे में यकीन नहीं दिलाया जा सकता कि वह अगले सौ बरस तक चलेगा।" वे भी गुस्सा खा गए, बोले, "खुदा का लाख शुक्र है, बच्चों के न पढ़

1. आग्रह

पाने की समस्या आपकी है, मेरी नहीं।" बात कड़ुवी थी पर सौ फीसदी सच। सच के आगे सिर झुकाने की हमारी बचपन की आदत थी। सो मैंने तय किया कि मैं खुद, अंग्रेज़ी-हिंदी-कन्नड़, तीन भाषाएँ पढ़ाने वाला, प्राइमरी स्कूल वहाँ खोलूँगी और कर्नाटक सरकार से उसे मान्यता भी दिलवाऊँगी। वहाँ के अनेक मेहनती और खिसके लोगों की मदद से यह व्रत पूरा हुआ। मेरे बच्चे तथा अन्य अफ़सरों के बच्चे उसी स्कूल में पढ़े। बाद में अलग-अलग शहरों के अलग-अलग ख्यात स्कूलों में दाखिला भी पा गए।

ऐसे अनेक मौके आए, जब मैंने अपने ज़िद्दीपन के नमूने पेश किए। पर सबसे ज़्यादा, उसने मंच पाया मेरे लेखन में, जो शुरू से अब तक लीक से खिसका, अपनी राह खुद तलाशता रहा है। पर सब कुछ कर लेने पर भी, मैं अपनी छोटी बहन रेणु के मुकाबिल नहीं पहुँच सकती। उन्नीस सौ पचास के अंतिम दौर में, एक रात दिल्ली में एक साथ नौ इंच बारिश हो गई। दिल्ली की खासियत यह रही है कि थोड़ा पानी बरसते ही, वहाँ के नाले-परनालों में बाढ़ आ जाती है, पुलों के नीचे पानी भर जाता है और तमाम यातायात ठप्प हो जाता है। इस कयामती बारिश के बाद तो सरकारी दफ़्तरों के पहले तल्लों से, फ़ाइलें पानी में तैर आई थीं। अगली सुबह, किसी तरह का कोई वाहन सड़क पर नहीं निकला था। ज़ाहिर है कि रेणु के स्कूल की बस भी उसे लेने नहीं आई। रेणु ने कहा, कोई बात नहीं, मैं पैदल चली जाऊँगी। सबने समझाया, स्कूल बंद होगा, मत जाओ। उसने कहा, आपको कैसे पता? इस सवाल का माकूल[1] जवाब किसी के पास नहीं था। हमारे यहाँ फ़ोन ज़रूर लगा हुआ था। स्कूल में भी रहा होगा। पर बारिश के चलते, वह ठप्प पड़ा हुआ था। तो रेणु अकेली, पैदल, स्कूल चल दी। गनीमत यह थी कि बारिश, एकमुश्त बरस लेने के बाद, थम गई थी। सड़कों पर पानी था पर और बरस नहीं रहा था। तो रेणु दो मील पैदल चलकर स्कूल पहुँची। जैसा हमने कहा था, वह बंद था। चौकीदार रेणु को देख दंग रह गया। पर रेणु को कोई मलाल नहीं था। वह वापस दो मील चलकर घर पहुँच गई। सबने कहा, हमने पहले ही कहा था।

1. मुनासिब, अच्छा

© NCERT not to be republished

उसने कहा, "स्कूल बंद था तो मैं वापस आ गई, इसमें आपका कहना कहाँ से आ गया?"

सोचती हूँ, कैसे रोमांच का अनुभव हुआ होगा उसे, उस दिन। जगह–जगह पानी से लब–लब करते, सुनसान शहर में, निचाट अकेले, अपनी धुन में, मंज़िल की तरफ़ चलते चले जाना। सच, अकेलेपन का मज़ा ही कुछ और है।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखिका ने अपनी नानी को कभी देखा भी नहीं फिर भी उनके व्यक्तित्व से वे क्यों प्रभावित थीं?
2. लेखिका की नानी की आज़ादी के आंदोलन में किस प्रकार की भागीदारी रही?
3. लेखिका की माँ परंपरा का निर्वाह न करते हुए भी सबके दिलों पर राज करती थी। इस कथन के आलोक में–

   (क) लेखिका की माँ के व्यक्तित्व की विशेषताएँ लिखिए।

   (ख) लेखिका की दादी के घर के माहौल का शब्द-चित्र अंकित कीजिए।
4. आप अपनी कल्पना से लिखिए कि परदादी ने पतोहू के लिए पहले बच्चे के रूप में लड़की पैदा होने की मन्नत क्यों माँगी?
5. डराने-धमकाने, उपदेश देने या दबाव डालने की जगह सहजता से किसी को भी सही राह पर लाया जा सकता है–पाठ के आधार पर तर्क सहित उत्तर दीजिए।
6. 'शिक्षा बच्चों का जन्मसिद्ध अधिकार है'– इस दिशा में लेखिका के प्रयासों का उल्लेख कीजिए।
7. पाठ के आधार पर लिखिए कि जीवन में कैसे इंसानों को अधिक श्रद्धा भाव से देखा जाता है?
8. 'सच, अकेलेपन का मज़ा ही कुछ और है'–इस कथन के आधार पर लेखिका की बहन एवं लेखिका के व्यक्तित्व के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

© NCERT not to be republished

0956CH03

3
रीढ़ की हड्डी

जगदीश चंद्र माथुर

मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अंदर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है वे अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते–चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।

बाबू : अबे धीरे–धीरे चल ...अब तख्त को उधर मोड़ दे...उधर...बस, बस!

नौकर : बिछा दूँ साहब?

बाबू : *(ज़रा तेज़ आवाज़ में)* और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या?...बिछा दूँ साब!...और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर : *(तख्त बिछाता है)* ही–ही–ही।

बाबू : हँसता क्यों है?...अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं, कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज़ है?...उसे सीधा कर ...यों ...हाँ बस। ...और सुन, बहू जी से दरी माँग ला, इसके ऊपर

© NCERT not to be republished

बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही। *(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं। गंदुमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है किसी काम में बहुत व्यस्त हैं। उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू साहब (रामस्वरूप) दोनों तरफ़ देखने लगते हैं...)*

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में...

रामस्वरूप : धोती?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदलकर आए हो, और फिर न जाने किसलिए...

रामस्वरूप : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन।

रामस्वरूप : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला...अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ। उल्लू कहीं का।

प्रेमा : अच्छा, जा पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं न! उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।

रतन : और दरी?

प्रेमा : दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में। वह पड़ी तो है।

रामस्वरूप : *(दरी उठाते हुए)* और बीबी जी के कमरे में से हरिमोनियम उठा ला, और सितार भी।...जल्दी जा।

(रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।)

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाडली बेटी तो मुँह फुलाए पड़ी है।

रामस्वरूप : मुँह फुलाए!...और तुम उसकी माँ, किस मर्ज़ की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आए हैं। अब तुम्हारी बेवकूफ़ी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ? सारे जतन करके तो हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं। अपना ज़माना अच्छा था। 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं...

रामस्वरूप : ग्रामोफ़ोन बाजा होता है न?

प्रेमा : क्यों?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे तब रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी। तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो हुआ क्या?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि ज़रा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुंदर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था। पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जन्म की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गई। भई, मैं बाज़ आई तुम्हारी इस लड़की से!

रामस्वरूप : न जाने कैसा इसका दिमाग है! वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

© NCERT not to be republished

प्रेमा : अरे मैंने तो पहले ही कहा था। इंट्रेन्स ही पास करा देते—लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती। पर तुम तो...

रामस्वरूप : *(बात काटकर)* चुप चुप... *(दरवाज़े में झाँकते हुए)* तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन सब लोगों के सामने ज़िक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी!

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो, करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

रामस्वरूप : तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और, नाश्ता तो तैयार है न? *(रतन का आना)* आ गया रतन?...इधर ला, इधर! बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल...पकड़ तो ज़रा उधर से।

(चद्दर बिछाते हैं।)

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज़्यादा खाएँगे नहीं। कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं। फल रखे हैं ही। चाय तैयार है, और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं।

रामस्वरूप : क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है। जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाए कि यहाँ का काम करे। दफ़्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए, सो नखरों के मारे...

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज़्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज़ खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आएगा...दो आदमी ही तो हैं।

© NCERT not to be republished

रामस्वरूप : हाँ एक तो बाबू गोपाल प्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि ज़रा करीने से आए। ये लोग ज़रा ऐसे ही है...गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का?

रामस्वरूप : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी.एस.सी. के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है, मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी...

रतन : *(जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी)* बाबू जी, बाबू जी!

रामस्वरूप : क्या है?

रतन : कोई आते हैं।

रामस्वरूप : *(दरवाज़े से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अंदर करते हुए)* अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गए। *(नौकर पर नज़र पड़ते ही)* अरे, तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ़। गया नहीं मक्खन लाने? ...सब चौपट कर दिया। अबे उधर से नहीं, अंदर के दरवाज़े से जा *(नौकर अंदर आता है)* ...और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी। *(प्रेमा जल्दी से अंदर की तरफ़ आती है। उसकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है।)*

प्रेमा : उँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

रामस्वरूप : तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ...जल्दी।

(प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।)

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। आइए, आइए...हँ-हँ-हँ।

© NCERT not to be republished

(बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफ़ी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज़ पतली है और खिसियाहट भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

रामस्वरूप : *(अपने दोनों हाथ मलते हुए)* हँ-हँ, इधर तशरीफ़ लाइए इधर। *(बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।)*

रामस्वरूप : यह बेंत!...लाइए मुझे दीजिए। *(कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं।)* हँ-हँ...मकान ढूँढ़ने में तकलीफ़ तो नहीं हुई?

गो. प्रसाद : *(खँखार कर)* नहीं। ताँगे वाला जानता था।...और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं?

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ़ तो दी...

गो. प्रसाद : अरे नहीं साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी!

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही हैं—हँ-हँ। *(थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर)* और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की छुट्टियाँ हैं?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक-एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप : आपके कोर्स खत्म होने में तो अब सालभर रहा होगा?

शंकर : जी, यही कोई साल दो साल।

रामस्वरूप : साल दो साल?

शंकर : हँ-हँ-हँ!...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ...

© NCERT not to be republished

गो. प्रसाद : बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख!

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गो. प्रसाद : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी। और अकेले दो आने की हज़म करने की ताकत थी, अकेले! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वॉली-बॉल जानता था, न टेनिस न बैडमिंटन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाए कि यह लड़का कमज़ोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।)

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ, उस ज़माने की बात ही दूसरी थी...हँ-हँ!

गो. प्रसाद : *(जोशीली आवाज़ में)* और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेज़ी लिखता था फ़र्राटे की, कि आजकल के एम.ए. भी मुकाबिला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गो. प्रसाद : माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है!

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ!...जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना। हँ-हँ-हँ!
(शंकर भी हीं-हीं करता है।)

गो. प्रसाद : *(एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए)* अच्छा, तो साहब, 'बिज़नेस' की बातचीत हो जाए।

रामस्वरूप : *(चौंककर)* बिज़नेस? बिज़...*(समझकर)* ओह...अच्छा, अच्छा। लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए।
(उठते हैं।)

गो. प्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ़ करते हैं!

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ! तकल्लुफ़ किस बात का? हँ-हँ! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ़ लाए। वरना मैं किस काबिल हूँ। हँ–हँ!...माफ़ कीजिएगा ज़रा। अभी हाज़िर हुआ।
(अंदर जाते हैं।)

गो. प्रसाद : *(थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में)* आदमी तो भला है। मकान–वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर : जी...
(कुछ खँखारकर इधर–उधर देखता है।)

गो. प्रसाद : क्यों, क्या हुआ?

शंकर : कुछ नहीं।

गो. प्रसाद : झुककर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आए हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'...
(इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए। मेज़ पर रख देते हैं)

गो. प्रसाद : आखिर आप माने नहीं।

रामस्वरूप : *(चाय प्याले में डालते हुए)* हँ–हँ–हँ! आपको विलायती चाय पसंद है या हिंदुस्तानी?

गो. प्रसाद : नहीं–नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए। और ज़रा चीनी ज़्यादा डालिएगा। मुझे तो भई यह नया फ़ैशन पसंद नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफ़ी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाए तो ज़ायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ–हँ, कहते तो आप सही हैं।

© NCERT not to be republished

(प्याला पकड़ाते हैं।)

शंकर : *(खँखारकर)* सुना है, सरकार अब ज़्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगाएगी।

गो. प्रसाद : *(चाय पीते हुए)* हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामस्वरूप : *(शंकर को प्याला पकड़ाते हुए)* वह क्या?

गो. प्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स! *(रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं)* मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाए कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैंडर्ड' के माफ़िक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

रामस्वरूप : *(ज़ोर से हँसते हुए)* वाह-वाह! खूब सोचा आपने! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उठता भी न था। *(तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ़ बढ़ाते हैं)* लीजिए।

गो. प्रसाद : *(समोसा उठाते हुए)* कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

रामस्वरूप : *(शंकर की तरफ़ मुखातिब होकर)* आपका क्या खयाल है शंकर बाबू?

शंकर : किस मामले में?

रामस्वरूप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गो. प्रसाद : *(बीच में ही)* यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत ज़रूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाए, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम आप मान भी जाएँ, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

© NCERT not to be republished

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गो. प्रसाद : देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप : हँ–हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ–हँ!

गो. प्रसाद : और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

रामस्वरूप : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, खुद–ब–खुद मिला हुआ समझिए।

गो. प्रसाद : यह ठीक कहा आपने, बिलकुल ठीक *(थोड़ी देर रुककर)* लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न?

रामस्वरूप : *(चौंककर)* क्या?

गो. प्रसाद : यह पढ़ाई–लिखाई के बारे में!...जी हाँ, साफ़ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढ़ी–लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए...क्यों शंकर?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।

रामस्वरूप : नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

गो. प्रसाद : और क्या साहब! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं, कि जब आपने अपने लड़कों को बी.ए., एम.ए. तक पढ़ाया है, तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेज़ी अखबार पढ़ने लगीं और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं।...हँ...हँ...हँ...!

© NCERT not to be republished

(शंकर भी हँसता है, मगर गोपाल प्रसाद गंभीर हो जाते हैं।)

गो. प्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ़ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीज़ों में से एक है।

रामस्वरूप : *(शंकर से)* चाय और लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप : *(गोपाल प्रसाद से)* आप?

गो. प्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

रामस्वरूप : आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताएँ, वह मक्खन...

गो. प्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ...हँ। *(मेज़ को एक तरफ़ सरका देते हैं। फिर अंदर के दरवाज़े की तरफ़ मुँह कर ज़रा ज़ोर से)* अरे, ज़रा पान भिजवा देना...! ...सिगरेट मँगवाऊँ?

गो. प्रसाद : जी नहीं!

(पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपाल प्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं।)

रामस्वरूप : ...हँ...हँ...यही, हँ...हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी पान मुझे दो। *(उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है। और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं।)*

(गोपाल प्रसाद और शंकर—एक साथ) चश्मा!

रामस्वरूप : *(ज़रा सकपकाकर)* जी, वह तो...वह...पिछले महीने में इसकी आँखें दुखनी आ गई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

Reprint 2025-26

गो. प्रसाद : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज़ किया न।

गो. प्रसाद : हूँ। *(संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में)* बैठो बेटी।

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-वाजे के पास। *(उमा बैठती है।)*

गो. प्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है।... हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।)

रामस्वरूप : क्यों, क्या हुआ? गाने को पूरा करो उमा।

गो. प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, काफ़ी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है। *(उमा सितार रखकर अंदर जाने को उठती है।)*

गो. प्रसाद : अभी ठहरो, बेटी।

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो, उमा! *(उमा बैठती है।)*

गो. प्रसाद : *(उमा से)* तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी...

उमा : *(चुप)*

रामस्वरूप : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गो. प्रसाद : हूँ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह?

रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के ज़िम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी। हँ...हँ...हँ।

© NCERT not to be republished

गो. प्रसाद : ठीक।...लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं? *(उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाए। गोपाल प्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)*

रामस्वरूप : जवाब दो, उमा। *(गोपाल प्रसाद से)* हँ-हँ, ज़रा शरमाती है, इनाम तो इसने...

गो. प्रसाद : *(ज़रा रूखी आवाज़ में)* ज़रा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

रामस्वरूप : उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

उमा : *(हलकी लेकिन मज़बूत आवाज़ में)* क्या जवाब दूँ बाबू जी! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ़ खरीदार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है, वरना...

रामस्वरूप : *(चौंककर खड़े हो जाते हैं)* उमा, उमा!

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी!...ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आए हैं, इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या बेबस भेड़-बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर...?

गो. प्रसाद : *(ताव में आकर)* बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज़्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा : *(तेज़ आवाज़ में)* जी हाँ, और हमारी बेइज़्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और ज़रा अपने इन साहबज़ादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाए गए थे!

शंकर : बाबू जी, चलिए।

गो. प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में?...क्या तुम कालेज में पढ़ी हो?

(रामस्वरूप चुप!)

उमा : जी हाँ, कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक–झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज़्ज़त, अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

रामस्वरूप : उमा, उमा?

गो. प्रसाद : *(खड़े होकर गुस्से में)* बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी.ए. पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ़ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए...मेरी छड़ी कहाँ है? मैं चलता हूँ *(बेंत ढूँढ़कर उठाते हैं।)* बी.ए. पास? उफ़्फ़ोह! गज़ब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो...
(दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।)

उमा : जी हाँ, जाइए, ज़रूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर ज़रा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं–यानी बैकबोन, बैकबोन!
(बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रूलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।)

प्रेमा : उमा, उमा...रो रही है!

© NCERT not to be republished

(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।)

रतन : बाबू जी, मक्खन...

(सब रतन की तरफ़ देखते हैं और परदा गिरता है।)

प्रश्न-अभ्यास

1. रामस्वरूप और गोपाल प्रसाद बात-बात पर "एक हमारा ज़माना था..." कहकर अपने समय की तुलना वर्तमान समय से करते हैं। इस प्रकार की तुलना करना कहाँ तक तर्कसंगत है?
2. रामस्वरूप का अपनी बेटी को उच्च शिक्षा दिलवाना और विवाह के लिए छिपाना, यह विरोधाभास उनकी किस विवशता को उजागर करता है?
3. अपनी बेटी का रिश्ता तय करने के लिए रामस्वरूप उमा से जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा कर रहे हैं, वह उचित क्यों नहीं है?
4. गोपाल प्रसाद विवाह को 'बिज़नेस' मानते हैं और रामस्वरूप अपनी बेटी की उच्च शिक्षा छिपाते हैं। क्या आप मानते हैं कि दोनों ही समान रूप से अपराधी हैं? अपने विचार लिखें।
5. "...आपके लाड़ले बेटे की रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं..." उमा इस कथन के माध्यम से शंकर की किन कमियों की ओर संकेत करना चाहती है?
6. शंकर जैसे लड़के या उमा जैसी लड़की—समाज को कैसे व्यक्तित्व की ज़रूरत है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. 'रीढ़ की हड्डी' शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
8. कथावस्तु के आधार पर आप किसे एकांकी का मुख्य पात्र मानते हैं और क्यों?
9. एकांकी के आधार पर रामस्वरूप और गोपाल प्रसाद की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
10. इस एकांकी का क्या उद्देश्य है? लिखिए।
11. समाज में महिलाओं को उचित गरिमा दिलाने हेतु आप कौन-कौन से प्रयास कर सकते हैं?

© NCERT not to be republished